श्री ज्ञान भारिल्ल, एम० ए०

अनन्य और अपराजेय जैनदर्शन

जैनदर्शन इस विश्व में आज तक प्रचलित और प्रतिपादित हुए समस्त दर्शनों में अद्‌भुत, अनन्य और अपराजेय है. इस संसार का वह सर्वश्रेष्ठ दर्शन है. इस कथन की सत्यता उन सुधी और धैर्यवान् पाठकों के समक्ष स्पष्ट हुए विना नहीं रह सकती जो वास्तव में सत्य के अन्वेषी हैं और जो तटस्थ भाव से, किसी भी पूर्वाग्रह से रहित होकर जैनदर्शन के विषय में जानना चाहते हैं. इससे पूर्व कि हम इस निबन्ध में जैनदर्शन की उन विशेषताओं पर विचार करें जो अन्य किसी भी दर्शन में हमें देखने को नहीं मिलतीं, इतना स्पष्ट कर देना अनिवार्य है कि हमारी इस विचारणा के पीछे शुद्ध सत्य और वास्तविकता के ज्ञान की भावना ही है, किसी अन्य धर्म के प्रति उपेक्षा या ईर्ष्या का लेश मात्र भी नहीं है. एक-एक तथ्य जो इस निबन्ध में प्रस्तुत किया जा रहा है, उसे देख कर पाठक स्वयं भी ऐसा ही अनुभव करेंगे—ऐसा हमारा विश्वास है.

कभी-कभी एक विचित्र प्रश्न पूछा जाता है. यदि जैनदर्शन ऐसा श्रेष्ठ है, इतना सम्पूर्ण दर्शन है, तो फिर उसका अनुसरण करनेवाले व्यक्तियों की संख्या इतनी कम क्यों है ? इस प्रश्न का उत्तर सीधा और स्पष्ट है. मनुष्य का स्वभाव है कि वह कठिनाई से बचना चाहता है और सरल मार्ग पर चल निकलता है. आज के इस स्व-केन्द्रित भौतिक युग में तो यह प्रवृत्ति अपने चरम-बिन्दु पर है. आज का भौतिकवादी मनुष्य-समाज अपने लिए और इस संसार के इस जीवन के लिए सारी सुख-सुविधाएँ बटोर लेना चाहता है और उसमें अपने जीवन की चरम सार्थकता समझता है, जब कि जैनदर्शन, स्वार्थ से परे परमार्थ और सत्य की ओर दृष्टि रखता है, मनुष्य को त्याग के मार्ग की ओर संकेत करता है और भौतिक नहीं, आध्यात्मिक सुख प्रदान करने का मार्ग है. यही कारण है कि आज जैनदर्शन के अनुयायियों की और जैनदर्शन को समझने और स्वीकार करनेवालों की संख्या न केवल कम है, बल्कि प्रतिदिन कम होती जा रही है. यह असमर्थता, अयोग्यता और दुर्भाग्य आज के भौतिकवादी मनुष्य का है,—दर्शन अथवा धर्म की स्थिति इससे परिवर्तित नहीं होती. बल्कि इससे यही प्रमाणित होता है कि यह दर्शन कोई काम चलाऊ दर्शन नहीं, हमारे सांसारिक स्वार्थों की पूर्ति के लिए ओढ ली गई कोई बनावटी नकाब नहीं—यह वह ठोस, दृढ़ और अचल आधार है जिसके सहारे आगे बढ़कर और ऊपर चढ़कर हम अपने वास्तविक और अन्तिम लक्ष्य—आध्यात्मिक विकास और सम्पूर्ण आत्मविशुद्धि तक पहुँच सकते हैं.

और यह चित्र तो आज की स्थिति का है, जब कि मनुष्य विगत कुछ शताब्दियों से धीरे-धीरे किन्तु स्पष्ट रूप से अवनति की ओर बढ़ा है, जहाँ तक मानवोचित गुणों का सम्बन्ध है. विज्ञान और सभ्यता (जिसे आज सभ्यता कहा जाता है, की दृष्टि से वह चाहे स्वयं को आगे बढ़ा समझे, किंतु मानवता के जो महान् और स्वाभाविक और स्थायी गुण हैं उनकी दृष्टि से आज के युग का मानव पीछे की ओर ही चला है, कमजोर और अयोग्य ही हुआ है. लेकिन वह भी युग था जब मनुष्य भौतिक स्वार्थों में इस तरह और इतना लिप्त नहीं था. और तब वह अपनी आत्मा को आज से अधिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पहचानता था, जीवन के अर्थ और सार्थकता को अधिक जानता था और अपने अन्तिम और एक मात्र लक्ष्य पर सीधा चलने का प्रयत्न करता था. इस युग में जैनधर्म—जो एक चिरन्तन ज्योति के समान प्राणी-मात्र के पथ को आलोकित करता है—के अनुयायी करोड़ों की संख्या में थे. इतिहास उलटने पर ऐतिहासिक तथ्यों और अनुसंधानों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि मौर्य-सम्राट् चन्द्रगुप्त और सम्प्रति महाराजा के शासनकाल में जैनियों की संख्या २० करोड़ से अधिक थी. मि० फरग्युसन (Ferguson) ने लिखा है कि भारत भर में जैन संस्कृति के स्मारक स्थान-स्थान पर बिखरे पड़े हैं. किसी स्थान पर एक चिह्न बना कर यदि हम खोज करें तो चार कोस के घेरे में हमें जैन संस्कृति का कोई न कोई स्मारक अवश्य उपलब्ध होगा. श्रीगंगानाथ बेनर्जी की मान्यता के अनुसार भी ईस्वी पूर्व की सदियों में जैनों की संख्या करोड़ों तक पहुंचती थी.

तात्पर्य केवल इतना ही है कि किसी भी धर्म अथवा दर्शन की सत्यता और श्रेष्ठता की परीक्षा करने का यह तरीका नहीं कि उसके अनुयायियों की संख्या की गिनती की जाय. उसकी श्रेष्ठता उसमें प्रतिपादित किये गये उन तत्त्वों में निहित होती है जो मनुष्य को अपने जीवन की उच्च भूमिका पर पहुँचने के लिए प्रेरित करते हैं. जैन दर्शन के उन विश्वप्रसिद्ध सिद्धान्तों का, जिनके अनुसरण और पालनसे आज पग-पग पर आशंका, युद्ध और विनाश से संत्रस्त मानवता सुरक्षित हो सकती है, का विचार हम आगे करेंगे. जैसा कि हमने पहले कहा, मनुष्य-स्वभाव सरलता को पकड़ने की कोशिश करता है और कठिनाई से बचना चाहता है. सत्य का मार्ग इतना सरल ही होता तो फिर कठिनाई शेष क्या रहती ? और यदि गम्भीरता से विचार किया जाए तो कठिनाई जो हमें मालूम पड़ती है वह हमारी कमजोरी में से आई है. हम ज्ञान से अज्ञान की ओर चलें, प्रकाश से अन्धकार की ओर बढ़ें और मार्ग में ठोकरें खाकर रुक जाएँ तो वह हमारी ही नासमझी है, हमारा ही अज्ञान है.

आइये, हम अज्ञान से ज्ञान की ओर चलें. अन्धकार से प्रकाश की ओर बढ़ें— जैनदर्शन के आलोक-लोक में अपने अंधकारग्रसित नेत्र खोलें. जैनदर्शन की ज्ञानाञ्जन-शलाका से अपनी 'अज्ञानतिमिरान्ध' आँखें उन्मीलित करें.

धर्म और दर्शन

धर्म और दर्शन परस्पर इतने संबंधित हैं कि यदि उन्हें एक ही वस्तु मान लिया जाए तब भी अनुचित नहीं होगा. धर्म का सम्बन्ध आचार से है और यह एक स्पष्ट बात है कि आचार और विचार का बहुत ही प्रगाढ संबंध है. अच्छे विचारों के विना अच्छे आचरण की आशा नहीं की जा सकती और अच्छे आचरण के विना अच्छे विचारों का मन में उठना अशक्य है. आचार और विचार परस्पर एक दूसरे को शक्ति देते हुए चलते हैं। यदि कोई मनुष्य निरन्तर अच्छा आचरण रखता है तो उसकी विचारधारा भी धीरे-धीरे शुद्ध होती चलती है और इसी तरह यदि कोई मनुष्य निरन्तर अच्छे विचार रखता है तो उसका आचरण भी, यदि वह शुद्ध नहीं है तो धीरे-धीरे शुद्ध और अच्छा होता जाता है.

यहाँ हमें दर्शन की आवश्यकता और उपयोगिता का अनुभव होता है. हमें यह विचार करना आवश्यक है कि अच्छा आचरण किसे कहें ? प्रत्येक व्यक्ति को अपने ही मनोनुकूल जैसा भी आचरण अच्छा लगे वही 'अच्छा' हो, यह आवश्यक नहीं. ऐसा हो तो मनुष्य अपनी वृत्तियों और इन्द्रियों को अच्छा लगने वाला प्रत्येक आचरण अच्छा समझ कर व्यवहार करने लगे और परिणामतः समाज में एक उच्छृङ्खलता व्याप्त हो जाय. अतः हमें इस परिणाम पर आना ही होगा कि अच्छा वह है जो सत्य हो. और सत्य क्या है इसका निर्णय करने के लिये हमें एक निश्चित और व्यवस्थित दर्शन की आवश्यकता है.

अब जो प्रश्न हमारे सामने उपस्थित होता है वह यह कि वह कौन-सा दर्शन है जिसका आश्रय लेकर हम सही मार्ग पर आगे बढ़ सकते हैं ?

वैसे तो संसार में जितने भी दर्शन हैं, सभी मनुष्य को सुविचार प्रदान करते हैं, किन्तु जैन दार्शनिकों ने इस विश्व को अनेकान्तवाद नाम से जो दर्शन भेंट किया है, उसकी समता कोई अन्य दर्शन नहीं कर सकता. क्योंकि यह दर्शन एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ऐसी पद्धति से युक्त है जो मनुष्य को किसी भी वस्तु के विषय में भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से विचार करने की समझ प्रदान करता है.

आज पश्चिम भौतिकवादी हो चुका है. भौतिक सुख और विकास ही उसका लक्ष्य है. उसका दर्शन भौतिक एवं सांसारिक सुखों के चारों ओर ही घूमता है. परिणामतः पश्चिम के देश दर्शन के पूर्ण विकास से बहुत ही दूर पड़े हुए हैं. जबकि भारत में धर्म तथा दर्शन भौतिक विकास या सुख के साधन न माने जाकर आत्म-विकास के साधन माने गए हैं. प्रकृति की कोई सांकेतिक लीला ही समझा जा सकता है कि दुनिया भर के सभी धर्मों का उद्भवस्थान एशिया खण्ड ही रहा है. हिन्दूधर्म, जैनधर्म, बौद्धधर्म, ईसाई धर्म, और इस्लाम धर्म—ये पांचों धर्म आज के विश्व के मुख्य धर्म हैं. इनमें से संसार ने जैन, बौद्ध और हिन्दू-धर्म को तो भारत में विकसित होते देखा है जब कि इस्लाम और ईसाई धर्म भी एशिया से ही अस्तित्व में आए हैं.[1]

इस्लाम, ईसाई और बौद्ध धर्म तो पिछले दो ढाई हजार वर्ष से ही अस्तित्व में आए हैं. इसे सारा संसार जानता है. शेष रहते हैं हिन्दू तथा जैनधर्म. इन दोनों के अनुयायी अपने-अपने धर्म को अनादिकालीन होने का दावा करते हैं. हमें इस निबन्ध में इस चर्चा में नहीं पड़ना है कि कौन-सा धर्म प्राचीन या अनादि है और कौन-सा अपेक्षाकृत नया. और किसी भी धर्म अथवा दर्शन की श्रेष्ठता केवल इस बात पर निर्भर नहीं करती कि वह कितना पुराना है. ठीक वैसे ही जैसे कि वह अपने अनुयायियों की संख्या पर भी निर्भर नहीं करती. किन्तु यदि हम खोज करें तो यह प्रकट होता है कि वेदों और भागवत आदि ग्रंथों में, जो कि हिन्दू धर्मशास्त्रों में अधिक से अधिक प्राचीन माने गए हैं, जैनों के वर्तमान तीर्थंकरचौवीसी के पहले तीर्थंकर श्रीऋषभदेव के सम्बन्ध में उल्लेख मिलते हैं. इससे सहज ही यह सिद्ध होता है कि इन दोनों धर्मों में भी जैन धर्म ही अधिक प्राचीन है. ऐतिहासिक प्रमाणों द्वारा सिद्ध इस बात को अनेक पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानों ने स्वीकार किया है. जैन अनुश्रुति के अनुसार भगवान् महावीर ने किसी नये तत्त्वदर्शन का प्रचार नहीं किया है. पार्श्वनाथ के तत्त्वज्ञान से उनका कोई मतभेद नहीं. किन्तु जैन अनुश्रुति इससे भी आगे जाती है. उसके अनुसार श्रीकृष्ण के समकालीन तीर्थंकर अरिष्टनेमि की परम्परा को ही पार्श्वनाथ ने ग्रहण किया था. और स्वयं अरिष्टनेमि ने प्रागैतिहासिक काल में होने वाले नमिनाथ से. इस प्रकार यह अनुश्रुति हमें ऋषभदेव, जो भरत चक्रवर्ती के पिता थे, तक पहुँचा देती है. इसके अनुसार तो वर्तमान वेद से लेकर उपनिषद् पर्यन्त सम्पूर्ण साहित्य का मूल स्रोत ऋषभदेव द्वारा प्रणीत जैनतत्त्वविचार ही है.[2]

जहाँ तक दर्शन का प्रश्न है, हिन्दू-धर्म में उसकी अनेक शाखाएँ हैं और हिन्दू दार्शनिकों में हिन्दू-दर्शन के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में मतभेद हैं. वेदान्त, नैयायिक, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, चार्वाक आदि—ये भिन्न-भिन्न शाखाएँ हिन्दू धर्म में हैं. इसके अतिरिक्त वेदान्त में अद्वैत और विशिष्टाद्वैत आदि भी अनेक उपशाखाएँ हैं. वैदिकधर्मसम्मत चौवीस अवतारों में आद्य जैनतीर्थंकर ऋषभनाथ और बौद्धधर्मप्रणेता बुद्ध भी सम्मिलित किये गये हैं. इन सब बातों पर विचार करने से ऐसा लगने लगता है कि वैदिकधर्म कोई एक धर्म ही नहीं है.

किन्तु इन सब में एक मात्र जैनदर्शन ही एक ऐसा दर्शन है जिसमें स्थिरता, एकता, और मूलभूत दृढ़ता विद्यमान है. इस दर्शन में तत्त्वाश्रित शाखाएँ अथवा उपमार्ग नहीं हैं. धर्माचरण की दृष्टि से जैनधर्म में दिगम्बर, श्वेताम्बर स्थानकवासी आदि शाखाएँ हैं किन्तु दर्शन की भूमिका पर ये सभी शाखाएँ एक हैं और एकमत ही हैं. हजारों वर्षों पूर्व, नहीं, अनादि काल से जैन तीर्थंकरों ने ठोस सिद्धान्त संसार के समक्ष रखे हैं. वे आज भी ज्यों के त्यों मौजूद हैं. स्पष्ट है कि ऐसा होने का कोई विशेष कारण भी होना चाहिये. यही कारण जैनदर्शन की विशिष्टता है.

केवल प्राचीनता की दृष्टि से जैनदर्शन की विशिष्टता का दावा नहीं किया गया है. यह निवेदन हम पूर्व कर चुके हैं.

---

१. अनेकान्त व स्याद्वाद—स्व० चन्दुलाल शाह.

२. न्यायावतार वार्तिकवृत्ति (प्रस्तावना)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनदर्शन की विशिष्टता और श्रेष्ठता उसके दर्शन, उसके तत्त्वज्ञान में निहित है. जैनदर्शन का वह विशिष्ट और सर्वोच्च सिद्धान्त अनेकान्तवाद है. अनेकान्तवाद की एक विशिष्ट महत्त्वपूर्ण तथा प्रमाणयुक्त पद्धति है. संसार के जितने भी विद्वान् इस तर्कपद्धति के परिचय में आते हैं, वे सभी इस पर मुग्ध हो जाते हैं. हर्मन जेकोबी, डा० स्टीनकोनो, डा० टेसीटोरी, डा० पारोल्ड, बर्नार्ड शा जैसे चोटी के पाश्चात्य विद्वानों ने इस दर्शन और इस तर्कपद्धति की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है.

अनेकान्त के विषय में हम आगे विस्तार से विचार करेंगे. यहाँ हमें इतना ही कहना अभीष्ट है कि जैनदार्शनिकों ने प्रत्येक वस्तु का एक स्थान पर अनेक दृष्टियों से निरीक्षण करने की अपनी अद्वितीय पद्धति से न केवल अपने ही दर्शन की, किन्तु संसार के सभी दर्शनों की छानबीन की है और यह सिद्ध किया है कि ये सारे दर्शन केवल एक ही अन्त (एकान्त) पर आधारित हैं. अलग-अलग दृष्टिबिन्दुओं पर विचार किये विना ही, सिर्फ एक ही ओर से विचार करके इन दर्शनों की रचना की गई है. जैनदार्शनिकों ने यह सिद्ध किया है कि जैनदर्शन सातों नयों (जिन्हें सात अन्त अथवा सात छोर कहा जा सकता है) पर आधारित है, इसलिए सम्पूर्ण और अविचल है, जबकि शेष मुख्य-मुख्य दर्शन एक ही अन्त अथवा छोर पर आधारित हैं, इसलिए अपूर्ण और ऐकांतिक हैं. हम यहाँ पर उल्लेख करना उचित और संगत समझते हैं कि भिन्न-भिन्न दर्शन किस-किस एक-एक नय पर रचित हैं. यथा—

(१) अद्वैत वेदान्त और सांख्य, संग्रह नय पर आधारित हैं.
(२) नैयायिक और वैशेषिकदर्शन नैगम नय पर आधारित हैं.
(३) चार्वाकमत सिर्फ व्यवहार नय पर आधारित है.
(४) बौद्धमत ऋजुसूत्र नय पर आधारित है.
(५) मीमांसक मत शब्द नय पर निर्भर है.
(६) वैयाकरणदर्शन समभिरूढनय का आधार लेकर चलता है.
(७) इनके अतिरिक्त अन्य कई Extremist (उद्दाम) तत्त्वज्ञान हैं जो सब एवंभूत नय के अनुसार चलते हैं.

उपरोक्त स्थिति को देखते हुए जैनदर्शन हमें एक महासमुद्र की भांति प्रतीत होता है जो इन सातों नयों को अपने में समाहित किए हुए है.

आइये, अब हम अनेकान्तवाद के विषय में कुछ विचार करें जिसकी सनातन शक्ति के बल पर जैनदर्शन संसार का सर्वश्रेष्ठ और दिग्विजयी दर्शन माना जाता है.

अनेकान्तवाद और स्याद्वाद

अनेकान्त शब्द का यदि हम विग्रह करें तो हमें उसमें तीन शब्द मिलते हैं—अन्+एक+अन्त, अर्थात् जिसका एक अंत नहीं—जिसमें अनेक अन्त हैं—वह अनेकान्त. किसी भी वस्तु के विषय में निर्णय करने से पूर्व हमें उसके अलग अलग पहलुओं तथा उसकी विभिन्न सीमाओं को अपनी दृष्टि में रखना चाहिये. ऐसा करने पर जो निर्णय हम करेंगे, उसमें हमें वस्तु का सच्चा स्वरूप जानने को मिलेगा. यह सुनहरी शिक्षा हमें अनेकान्तवाद देता है. श्री सिद्धसेन दिवाकर ने कहा है—

जेण विणा लोगस्स वि ववहारो सव्वहा न निव्वहइ
तस्स भुवणेक्कगुरुणो णमो अणेगंतवायस्स ॥

भावार्थ—जिसके विना लोकव्यवहार भी सर्वथा नहीं चलता, उस भुवन के श्रेष्ठ गुरु अनेकान्तवाद को नमस्कार हो.[१]
इंग्लैंड के प्रसिद्ध विद्वान् डा० थामसन ने कहा है कि—Jain logic is very high. The place of syadvad

१. सन्मतितर्क

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

in it is very important. It throns a fine light upon the various conditions & states of the things.

(न्यायशास्त्र में जैनन्याय अति उच्च है. उसमें स्याद्वाद का स्थान अति गम्भीर है. वस्तुओं की भिन्न-भिन्न परिस्थितियों पर वह सुन्दर प्रकाश डालता है.)

महामहोपाध्याय रामशास्त्री ने कहा है—'स्याद्वाद जैनधर्म का अभेद्य किला है. उसमें प्रतिवादियों के मायामय गोले प्रवेश नहीं कर सकते हैं."

पं० हंसराज शर्मा कहते हैं—"अनेकान्तवाद-स्याद्वाद अनुभवसिद्ध स्वाभाविक और परिपूर्ण सिद्धान्त है."

महात्मा गांधी स्याद्वाद के विषय में कहते हैं—"अनेकान्तवाद (स्याद्वाद) मुझे बहुत प्रिय है. उसमें मैंने मुसलमानों की दृष्टि से उनका, ईसाइयों की दृष्टि से उनका, इस प्रकार अन्य सभी का विचार करना सीखा. मेरे विचारों को या कार्य को कोई गलत मानता तब मुझे उसकी अज्ञानता पर पहले क्रोध आता था. अब मैं उनका दृष्टिबिन्दु उनकी आँखों से देख सकता हूँ, क्योंकि मैं जगत् के प्रेम का भूखा हूँ. अनेकान्तवाद का मूल अहिंसा और सत्य का युगल है." गांधीजी द्वारा कही गई बात राजनीति के क्षेत्र में कितनी उपयोगी और महत्त्वपूर्ण है, यह स्पष्ट है. वैज्ञानिक क्षेत्र में स्याद्वाद ने अपनी उपयोगिता सिद्ध की है. वस्तुओं को अनेक दृष्टि से देखना, जाँचना और उनके विविध गुण-धर्मों से परिचित होना अनेकान्त दृष्टि के अतिरिक्त और क्या है ? यदि विज्ञान अपनी पहले से चली आ रही मान्यताओं से ही जकड़ा रहता और कई-अनेक दृष्टियों को नहीं अपनाता तो क्या वह अपनी कोई भी शोध कार्यान्वित कर सकता था ? लोहा बहुत भारी होता है और पानी में डूब जाता है, ऐसी एकान्त रूढ मान्यता बहुत समय से चली आ रही है. किन्तु विज्ञान ने उसे अन्य दृष्टियों से देखने का प्रयत्न किया. इस प्रयत्न और प्रयोग में लोहा हल्का भी बन जाता है और इस कारण से पानी पर तैर सकता है. उसके इस अनेकान्तज्ञान ने लोहे के जलयान समुद्र में चला दिए. इसी प्रकार बिजली, ध्वनि, अणुशक्ति आदि से सम्बन्धित सभी चीजें अनेकान्त दृष्टि पर ही अवलम्बित हैं.

वैज्ञानिक जगत् में अनेक समस्याएँ घिरी हुई थीं. किन्तु सन् १९०५ में जब प्रो० आइन्सटीन ने संसार के सम्मुख अपना सापेक्षवाद सिद्धान्त (Theory of Relativity) रखा, तब उनमें से अधिकाँश समस्याओं का समाधान सहज ही में हो सका. यह सापेक्षावाद क्या है ? स्याद्वाद अथवा अनेकान्तवाद का ही दूसरा नाम सापेक्षवाद है. जैनशास्त्रों में स्याद्वाद को स्पष्ट रूप से अपेक्षावाद या सापेक्षवाद कहा गया है.[1]

जैन दार्शनिकों द्वारा स्याद्वाद और अनेकान्तवाद, इन दोनों शब्दों का प्रयोग समान अर्थ में किया गया है. अतः उनमें कोई भिन्नता नहीं है.[2]

किसी वस्तु का एक ही अन्त अथवा छोर अथवा पहलू अथवा गुणधर्म देखकर जब उसके समस्त स्वरूप का निर्णय कर लिया जाय तो वह एकान्तवाद है. किन्तु जब वस्तु के अनेक अन्त, छोर, पहलू अथवा गुणधर्मों का अवलोकन करके उसके सम्बन्ध में निर्णय किया जाय तो वह अनेकान्तवाद है. कहा गया है कि "एकस्मिन् वस्तुनि सापेक्षरीत्या विरुद्ध-नानाधर्मस्वीकारो हि स्याद्वादः" एक ही पदार्थ में सापेक्ष रीति से नाना प्रकार के विरोधी धर्मों का स्वीकार करना ही स्याद्वाद है.[3]

यहाँ हमें स्याद्वाद शब्द की व्युत्पत्ति करके उसके सही अर्थ को समझ लेना चाहिए. स्याद्वाद शब्द 'स्याद्' और 'वाद' इन दो पदों से बना हुआ है. अतः इसका अर्थ हुआ—स्यात् शब्द की मुख्यता वाला वाद—स्याद्वाद. वाद का अर्थ तो स्पष्ट है—कथन अथवा प्रतिपादन. किन्तु स्याद् शब्द अत्यन्त रहस्यपूर्ण है और उसके ठीक अर्थ को समझ लेना अत्यन्त

१. जैनधर्मसार

२. अनेकान्तात्मकार्थकथनं स्याद्वादः लघीयस्त्रयटीका.

३. स्याद्वादोऽनेकान्तवादः. —स्याद्वादमंजरी.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आवश्यक है. इस पद का अर्थ ठीक नहीं समझ कर संसार के बड़े-बड़े विद्वानों ने भूल की है और परिणामतः स्याद्वाद को संशयवाद अथवा विवर्तवाद कहा है. जैन ग्रंथों में अनेक ऐसे विवेचन हैं जो इस पद का सही रहस्य अथवा अर्थ बताते हैं फिर भी यह भ्रांतिपूर्ण परम्परा अब तक चली आ रही है.

जो शब्द जिस अर्थ में प्रयुक्त हुआ हो उसी अर्थ में उसे ग्रहण किया जाना चाहिए. अन्यथा यदि अर्थ का अनर्थ हो तो उसमें क्या आश्चर्य है ? भाषा के अनुसार स्यात् शब्द का अर्थ भले ही 'सम्भवतः' अथवा 'कदाचित्' होता हो, किन्तु यहाँ पर 'स्यात्' शब्द इस अर्थ में प्रयुक्त नहीं हुआ है. इसका प्रयोग कथंचित् अर्थात् 'विशिष्ट अपेक्षा से' इस अर्थ में हुआ है. इस अर्थ में जब हम 'स्यात् अस्ति घटः' अथवा 'स्यात् नास्ति घटः' कहते हैं तब उसका यह अर्थ नहीं होता कि सम्भव है यहाँ घड़ा है, अथवा सम्भव है यहाँ घड़ा नहीं है. किन्तु इसका अर्थ होता है 'कथंचित्' अर्थात् 'किसी विशिष्ट अपेक्षा से' यह घड़ा है. और कथंचित्—किसी विशिष्ट अपेक्षा से यह घड़ा नहीं है. अस्तु, स्यात् पद किसी प्रकार संशय अथवा सम्भावना प्रकट करने के लिए नहीं, अपितु एक निश्चित अपेक्षा का दृष्टिकोण प्रकट करने के लिये प्रयुक्त किया गया है.

अंग्रेजी भाषा में स्यात् पद का अर्थ (It may be perhaps, perchance) इस प्रकार किया जाता है जो कि सर्वथा गलत है. संगत और सही अर्थ है—(Under certain circumstances). अतः जहाँ स्यात् अस्ति और स्यात् नास्ति ऐसे पद कहे गए हों वहाँ (Perhaps it is, Perhaps it is not) ऐसा गलत अर्थ करने के स्थान पर (Under certain circumstances it is) तथा (Under certain circumstances it is not) ऐसा अर्थ जाना चाहिए. सर मोनियर विलियम्स की विश्वविख्यात संस्कृत-इंग्लिश डिक्सनरी में यह अर्थ दिया हुआ है.[1] फिर भी हम यदि इसका अर्थ (Rigarding certain aspects) अर्थात् अमुक अपेक्षा से करें तो वह अधिक व्यावहारिक होगा.[2]

आचार्य मल्लिषेण ने स्याद्वादमंजरी में स्पष्ट कहा है कि 'स्यादित्यव्ययमनेकान्तद्योतकम्' अर्थात् स्यात् अव्यय अनेकान्त का द्योतक है.[3]

उपरोक्त विवेचन से इतना तो अब हम समझ ही चुके हैं कि किसी भी एक वस्तु को किसी एक ही पक्ष से देखकर उसके स्वरूप के सम्बन्ध में निर्णय करना एकान्त निर्णय है और इसीलिये वह गलत है. अनेकान्तवाद हमें यही शिक्षा देता है कि किसी भी विषय का निर्णय करने से पहले उसके हर पहलू की जांच करना चाहिए.

किन्तु इतना ही समझ लेना पर्याप्त नहीं है कि वस्तु के अनेक पक्ष, अनेक अन्त होते हैं. हमें यह भी जानना चाहिए कि प्रत्येक वस्तु में आपस में विरोधी अनन्त-गुण-धर्मात्मक अनेक प्रकार की विविधताएं भरी हुई हैं. इस दृष्टि से जैन दार्शनिकों का कहना है कि जो वस्तु तत्त्वस्वरूप है, वह अतत्त्व रूप भी है. जो वस्तु सत् है, वह असत् भी है. जो एक है, वह अनेक भी है. जो नित्य है, वह अनित्य भी है. इस प्रकार हर एक वस्तु परस्पर विरोधी गुण धर्मों से भरी हुई है.

इस महत्त्वपूर्ण बात को ठीक तरह से समझ लेने पर ही हम अनेकान्त अथवा स्याद्वाद के सही अर्थ को समझ सकते हैं. स्वाभाविक रूप से यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि 'जो सत् है वही असत् कैसे हो सकता है ?'

सामान्य दृष्टि से देखने पर हमें प्रतीत हो सकता है कि यह विरोधाभास इतना प्रबल है कि इसे देखने से जैन दार्शनिकों द्वारा कही गई बात में संशय हो सकता है. किन्तु वास्तव में ऐसी बात नहीं है. जैन दार्शनिकों ने अनेकान्तवाद की दृष्टि से, अनेक भिन्न-भिन्न दृष्टिबिन्दुओं तथा विचारधाराओं का एक साथ विचार करने के बाद ही यह

---

१. पृष्ठ १२७३.
२. जैनधर्मसार—स्व० चन्दुलाल शाह.
३. पांचवें श्लोक की व्याख्या.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बात कही है. द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की चारों अपेक्षाओं, सातों नयों द्वारा की गई तुलना और सप्तभंगी से मिलान करने के पश्चात् ही जैन शास्त्रकारों ने यह विचित्र किन्तु सम्पूर्ण रूप से सत्य बात कही है. उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो सकेगी.

(१) कोई दवाई है. वह एक विशेष बीमारी से पीड़ित मनुष्य के लिए उपयोगी है, लेकिन वही दवाई दूसरे पीड़ित मनुष्य के लिए व्यर्थ होती है. यह स्वीकृति तथ्य है. अतः एक ही दवाई उपयोगी भी है और व्यर्थ भी.

(२) विष एक ही है. किन्तु वह अलग-अलग स्थितियों में बिलकुल विपरीत कार्य करता है. वह मनुष्य को मार भी देता है और विशेषरूप से, विशेष संयोग में प्रयोग में लिये जाने पर वह मनुष्य को जिलाने का भी कार्य करता है. इस तरह विष, जो एक ही पदार्थ है, विष और अमृत दो पदार्थों का कार्य करता है. अर्थात् उस एक ही पदार्थ में दो सर्वथा विरोधी गुणधर्म उपस्थित रहते हैं.

जैनदर्शन के अनेकान्तवाद के विरुद्ध अन्य मत स्वीकार करने वालों का सबसे बड़ा विरोध यह है कि जो वस्तु सत् है वही वस्तु असत् कैसे हो सकती है ? जो नित्य है वही अनित्य कैसे हो सकती है ? इसका मुख्य कारण यही है कि उन्होंने एक वस्तु को एक ही पहलू से, एक ही स्वरूप में देखा है, जब कि जैन दार्शनिकों ने वस्तु के पूर्ण स्वरूप को अपनी दृष्टि में रख कर यह बात कही है, किसी एक पहलू अथवा स्वरूप के सम्बन्ध में यह बात उन्होंने नहीं कही है.

गम्भीरता से विचार करने पर प्रतीत होगा कि ये जो विरोधी दिखने वाले गुणधर्म हैं वे वस्तुतः अलग-अलग नहीं, एक ही हैं. जो सत् है वही असत् है, दोनों एक दूसरे में मिले हुए हैं, एक के विना दूसरे का अस्तित्व न केवल निरर्थक ही बल्कि असंभव हो जाता है. एक का अस्तित्व दूसरे के कारण—दूसरे के आधार पर ही है. यदि उनमें से एक का नाश हो जाय तो दूसरे का अस्तित्व भी नहीं रह सकता. जगत् में यदि असत्य न होता तो सत्य की क्या आवश्यकता थी ? असत्य है, इसीलिये सत्य भी है. परस्पर विरोधी दिखाई पड़ने वाले ये सत्त्व और असत्त्व आदि धर्म तत्त्व के दो स्वरूप हैं. अनेकान्त दृष्टि से देखे जाने पर ये दोनों भिन्न भी हैं और अभिन्न भी.

इसी प्रकार नित्य-अनित्य, एक-अनेक आदि परस्पर विरोधी गुणधर्म होते हुए भी वास्तव में एक ही हैं. प्रकाश और अन्धकार को ही लीजिये. वैसे तो ये भिन्न तत्त्व हैं. इनका कार्य एक दूसरे का विरोधी है. यदि यह कहा जाय कि एक ही वस्तु में प्रकाश और अन्धकार दोनों साथ रहते हैं, तो क्या यह बात स्वीकार की जायेगी ?

विचार करने पर मालूम होगा कि यह सत्य है. जब आकाश में प्रकाश था तब अन्धकार कहाँ था ? प्रकाश के आने पर अन्धकार कहाँ गया ? क्या अन्धकार के छिपने के लिए अन्य कोई स्थान है ? नहीं. तब फिर यह मानने में आपत्ति क्यों कि ये दोनों तत्त्व एक ही हैं अथवा एक दूसरे में ही समाहित हैं ? अन्धकार जो था वह प्रकाश में ही विलीन हो गया, उसी तरह जो प्रकाश था वह अन्धकार के आगमन पर उसमें ही विलीन हो गया. अतः जो परिवर्तन हमें दिखाई देता है वह सिर्फ अवस्था का है. रात की अपेक्षा से अन्धकार और दिन की अपेक्षा से प्रकाश को हम देखते हैं. अतः जैन दार्शनिकों ने अन्धकार और प्रकाश के मूलभूत पुद्गलों को एक माना है. केवल अवस्थाभेद के कारण ही वे अन्धकार और प्रकाश के रूप में आते हैं. इससे यह स्पष्ट होता है कि परस्पर विरोधी गुणधर्म वाले ये तत्त्व वास्तव में एक ही तत्त्व के अन्तर्गत हैं. यदि हम अनेकान्त दृष्टि से देखें तो हमें इसे समझने में कठिनाई नहीं हो सकती है.

बहुत बड़ा आश्चर्य तो हमें तब होता है जब वेदान्त के अनुयायी इस बात का विरोध करते हैं. उनकी मान्यता है कि प्रथम जो था वह शुद्ध विशुद्ध निर्गुण ब्रह्म था. उसमें से माया का सर्जन हुआ. ब्रह्म शुद्ध है, माया अशुद्ध है. ब्रह्म और माया परस्पर विरोधी गुण धर्म वाले तत्त्व हैं. यदि माया की उत्पत्ति ब्रह्म से हुई तो इसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि उत्पत्ति के पूर्व यह माया ब्रह्म में बसी हुई थी. और यदि ऐसा ही है तो उस शुद्ध ब्रह्म के भीतर ही एक अशुद्ध तत्त्व मौजूद था. इस तरह वेदान्त की कल्पना के अनुसार शुद्ध और अशुद्ध—दो परस्पर विरोधी तत्त्व एक साथ ही थे. अपनी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ही मान्यता और कल्पना को काटकर वे इस बात को स्वीकार नहीं करते. और यदि करें तो जैनदर्शन ने जो यह बात बताई है कि 'प्रत्येक वस्तु परस्पर विरोधी गुणधर्म से युक्त है' उसे भी उन्हें स्वीकार करना होगा.

इतने विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जैनदर्शन द्वारा प्रतिपादित अनेकान्तदृष्टि ही एक ऐसा मार्ग है जो हमें इस संसार की प्रत्येक वस्तु को उसके सच्चे और वास्तविक रूप में समझ सकने में सहायता करता है. बल्कि यदि ऐसा कहा जाय कि अनेकान्तदृष्टि ही एक मात्र दृष्टि है, शेष अज्ञान है, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी. अनेकान्तदृष्टि प्राप्त होते ही हमारे जीवन में समभाव का उदय स्वाभाविक रूप से हो जाता है. क्योंकि ऐसा होने पर हम किसी भी वस्तु अथवा घटना की समस्त मर्यादाओं, विभिन्न पहलुओं को जानते और विचारते हैं. हम यह जान जाते हैं कि अवस्था-स्वरूप बदलने से ही वस्तु में परिवर्तन आता है. इसी प्रकार द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव इत्यादि के बदलने पर उस वस्तु के स्वरूप में परिवर्तन आता है. अथवा यों कहें कि इन भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं से एक ही वस्तु भिन्न-भिन्न स्वरूपों में दिखाई पड़ती है. एक ही देह काल की अपेक्षा से बाल्यावस्था, यौवन, अधेड़ावस्था, वृद्धावस्था आदि अवस्थाओं में पहचानी जाती है. द्रव्य की अपेक्षा से वही देह कोमल, मजबूत, स्वस्थ, पीड़ित, सशक्त, अशक्त आदि दीख पड़ती है. क्षेत्रभेद से वही अंग्रेज अमरीकन हिन्दुस्तानी आदि रूप में जानी जाती है. भाव की अपेक्षा से वही मनुष्य सौम्य, रौद्र, शान्त अशांत स्थिर-अस्थिर रूपवान-कुरूप आदि दिखलाई पड़ता है.

तात्पर्य यह है कि किसी भी पदार्थ में परस्पर विरोधी गुणधर्मों का अस्तित्व होता ही है. जैन दार्शनिक जब यह कहते हैं कि एक ही वस्तु है भी और नहीं भी है; तब अनेकान्त दृष्टि द्वारा ही यह बात कहते हैं, और यह यथार्थ है. अनेकान्त दृष्टि की ये बातें इतनी महत्त्वपूर्ण और समझने योग्य हैं कि यदि हम इन्हें ठीक प्रकार से समझ लें तो हमारे सम्पूर्ण जीवन और सारे संसार की समस्याओं का हल आसानी से हो जाय. आज के विज्ञानवादी अणु-परमाणुओं के संशोधनयुग में हमें यह बात समझने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि एक और अनेक दोनों एक ही साथ एक समय में ही रहते हैं. जैनतत्त्वज्ञानियों ने सर्वथा असंदिग्धता से, भारपूर्वक यह बात कही है कि एकान्त नित्य से अनित्य का या एकान्त अनित्य से नित्य का स्वतंत्र उद्भव असंभव है. यह ज्ञान हमें द्वैत अद्वैत और उसकी सभी शाखाओं से तथा क्षणिकवाद आदि सभी एकान्त तत्त्वज्ञानों में नहीं मिल सकता, क्योंकि इनकी रचना एकान्तज्ञान के आधार पर तथा ऐकान्तिक निर्णय द्वारा की गई है. इन सब दर्शनों के सम्मुख जैनदर्शन का अनेकान्तवाद एक महान् समुद्र की भांति खड़ा है. उसके द्वारा दी गई समझ और ज्ञान ही एक मात्र सच्ची समझ और ज्ञान है. वस्तु के विभिन्न पक्ष तथा उसी वस्तु में रहे हुए परस्पर विरोधी गुणधर्म हमें एकान्त दृष्टि से समझ में नहीं आते, दिखाई ही नहीं देते. अनेकान्तदृष्टि द्वारा ही हम उन्हें देख और समझ सकते हैं. जैनदर्शन, जहाँ तक दर्शन का सम्बन्ध है, एक महान् सिद्धि है. यही कारण है कि अनेकान्तवाद को तत्त्वशिरोमणि की उपाधि दी गई है.[१]

सुवर्ण और कसौटी

वैसे तो अनेकान्तवाद, स्याद्वाद और अपेक्षावाद (सापेक्षवाद) एक ही हैं. फिर भी यदि हम अनेकान्तवाद को और भी बारीकी से समझना चाहें तो हम यह कह सकते हैं कि अनेकान्तवाद के इस तथ्य को कि प्रत्येक वस्तु में परस्पर विरोधी अनेक गुण-धर्म होते हैं ; युक्तियुक्त एवं तार्किक ढंग से प्रस्तुत करने के लिए जिस पद्धति की आवश्यकता है वह पद्धति स्याद्वाद है. हम अनेकान्त को सुवर्ण तथा स्याद्वाद को कसौटी की उपमा दे सकते हैं. अथवा अनेकान्त को हम एक किले की तथा स्याद्वाद को उस किले तक जाने वाले मार्गों को बतलाने वाले नक्शे की उपमा भी दे सकते हैं. किन्तु भूलना नहीं चाहिए कि अनेकान्तवाद तथा स्याद्वाद एक ही तत्त्वज्ञान के अंग हैं, इस कारण वे वस्तुतः एक ही हैं.[२]

---

१. अनेकान्तवाद व स्याद्वाद–स्व० चन्दूलाल शाह.

२. स्याद्वादोऽनेकान्तवादः —स्याद्वादमंजरी.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आज का संकटग्रस्त संसार, जीवन और जैनदर्शन

आजका युग, आज का संसार—यह भौतिक वाद की ओर अन्धा होकर दौड़ता चला जा रहा मानव-समाज विनाश के अतल गर्त के कितना समीप आ पहुँचा है, इस बात को कौन समझदार व्यक्ति नहीं जानता ? आज के मनुष्य का जीवन कितना संदिग्ध और उलझनों से भरा हुआ प्रतीत होता है ? ऐसा लगता है कि चारों ओर सघन अन्धकार परिव्याप्त है और कहीं किसी दिशा में कोई एक भूली-भटकी किरण भी दिखाई नहीं देती.

हम आँखें होते हुए भी अन्धे बने हैं. प्रकाश की उपेक्षा करके अन्धकार की ओर दौड़ें तो यह हमारा ही अज्ञान है. किन्तु यदि अपनी सहज बुद्धि का उपयोग करें, तटस्थ तथा निष्पक्ष भाव से विचार करें तो हमारे लिए निराशा का कोई कारण नहीं है.

अनन्त और अमर आशा का संदेश लिये हुए जैनदर्शन और जैनधर्म के युग-युगान्तरों से चले आ रहे अटल सिद्धान्त हमारे द्वार पर खड़े हैं. आवश्यकता इतनी ही है कि हम अपने हृदय के, मन के अवरुद्ध कपाट उन्मुक्त करें और उन सिद्धान्तों का स्वागत करें जो हमारे जीवन को, हमारी सृष्टि को, हमारे अस्तित्व को सुरक्षित तथा उन्नत करने के लिये उपस्थित हैं.

आज हमें जीवन एक समस्या के समान प्रतीत होता है. हम चारों ओर से परेशानियों और झंझटों से अपने आपको घिरा हुआ अनुभव करते हैं. क्या इसका कारण कभी हमने शान्त चित्त से विचारा है ?

इसका एक मात्र कारण है कि हम अपने सहज स्वभाव को भूल बैठे हैं. मनुष्य जीवन के जो वास्तविक और हितकारी सिद्धान्त हैं उन्हें हमने त्याग दिया है और हम इन झूठे और भ्रामक आकर्षणों की ओर दौड़ रहे हैं जो मात्र भौतिक हैं, अस्थायी हैं, और इसीलिए असत्य हैं.

सत्य का मार्ग जैनदर्शन जब हमें बतलाता है तो हम, चूंकि हमें बुद्धिवादी होने का भ्रम और गर्व है, अपना मुंह बनाकर कहते हैं—यह साधु-संन्यासियों की बातें हैं, भला इस संसार में यह कहीं चलता है !

यह साधु संन्यासियों की बातें भला आपके इस असाधु, इस जड़-अनुरक्त संसार में कैसे चल सकती हैं ? और नहीं चल सकतीं तो न चलने दीजिए. इससे सत्य को हानि नहीं है. आप हिंसक बने रहिए, अपने ही हाथों मानवता का खून कीजिए, अपने ही अस्तित्व को अपने ही हाथों विनष्ट कर दीजिए—इसमें अहिंसा के पवित्र तत्त्व की कोई हानि है ? आप शायद विचार कर रहे हैं, विचार बड़ी उपयोगी वस्तु है, विचारिए. .... आज की मानवता, मानवसमाज के सन्मुख जो समस्या है वह मनुष्य के अपने ही स्वार्थ, दुर्बलता और अज्ञान के कारण है. आज का मनुष्य कठिनाई का सामना करने को तैयार नहीं है. वह कठिनाई से तो मुंह मोड़ कर भागता ही है, स्वयं अपनी दुर्बलताओं को भी स्पष्ट रूप से समझने से कतराता है. यह मनुष्य की पलायनवृत्ति (Escape tendency) है. और विश्वास कीजिये जब तक यह वृत्ति मनुष्य में है तब तक वह किसी भी प्रकार अपना हित नहीं कर सकता. उसे निरन्तर अवनति और विनाश की ओर ही खिसकते चले जाना होगा.

जीवन में किसी भी दुःख अथवा समस्या के आ पड़ने पर उसे दूर करने, उसका समाधान ढूंढ निकालने का मार्ग क्या है ? जैनदर्शन कहता है कि अपने विवेक का उपयोग करो. यह विचार करो कि वह दुख क्या है, उसका स्वरूप कैसा है, उसका कारण क्या है, उसे दूर करने का उपाय क्या है ? दुख आया है तो उसके सामने हमारे पास जो सुख हो उसका विचार हमें करना चाहिए. ऐसा विचार हमारे मन को शान्त और सुव्यवस्थित करेगा. इस तरह शान्त बने हुए चित्त से अपनी विवेक-बुद्धि का उपयोग करके यदि हम विचार करने लगेंगे तो हमें साफ दिखाई देगा कि आया हुआ, अथवा माना हुआ वह दुख दूर किया जा सकता है. उस दुख के पीछे ही सुख भी रहा हुआ है. हम उस दुख के कारणों को जान सकेंगे. और कारण जानने के बाद हम उसे दूर करने का पुरुषार्थ भी कर सकेंगे. इस प्रकार की समझ और उस समझ से दिखाई पड़ने वाला उन्नति का एवं सुख का राजमार्ग हमें केवल स्याद्वाद के द्वारा ही मिलेगा.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तात्पर्य यह है कि मनुष्य-समाज के समक्ष आज जो समस्याएँ, जो भी कठिनाइयाँ हैं, उनका अस्तित्व इसीलिये है कि हमें जीवन का, जीवन के उद्देश्य का, जीने की पद्धति का स्पष्ट ज्ञान नहीं है. यदि हमें यह ज्ञान हो जाय तो आज ध्वंस के कगार पर खड़ी हुई मानवता की रक्षा निश्चित रूप से हो सकती है.

और इस ज्ञान की मशाल को मजबूती से अपने हाथों में चिर काल से-अनादि काल से थामें हुए जैनदर्शन एक अचल ज्योतिस्तम्भ के समान खड़ा है.

आइये, हम जरा विचार करें कि जैनदर्शन हमारे सामने क्या सिद्धान्त उपस्थित करता है.

जैनदर्शन की विशिष्ट आचारपद्धति

कौन नहीं जानता कि हमारा मन, मनुष्य मात्र का मन, आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा इन पांचों इन्द्रियों के सहयोग से कार्य करता है. यदि इनमें से एक भी इन्द्रिय कार्य नहीं करती तो जीवन खंडित हो जाता है. ठीक इसी प्रकार जैन-दार्शनिकों ने मनुष्य के आचरण—मनुष्य के जीवन-व्यवहार के लिए एक ऐसी विशिष्ट आचारपद्धति बताई है जिसका अनुसरण और पालन यदि हम करने लग जायं तो यह निश्चित स्पष्ट और अवश्यम्भावी है कि हमारे सामने आज जो हमारे विनाश का भय उपस्थित हो गया है उससे हमें सहज ही मुक्ति मिल जाय तथा मानव-समाज एक सुखी समाज बन जाय. इस आचारपद्धति के प्रमुख सिद्धान्त निम्न प्रकार हैं :— (१) अहिंसा (२) सत्य (३) अस्तेय (४) ब्रह्मचर्य (५) अपरिग्रह.

इन महान् अर्थगम्भीर और परम कल्याणकारी सिद्धान्तों के विषय में शाब्दिक दृष्टि से हम प्रायः लोगों को बात-चीत करते देखते हैं. लेकिन उनमें से कितने हैं जो इनके वास्तविक अर्थ को समझते हैं ? कितने हैं जो गम्भीरता से इनके मर्म पर विचार करते हैं ? इनका पालन करना तो दूर—बहुत दूर की बात है.

ये सिद्धान्त इतने महान् हैं कि इनमें से प्रत्येक पर अलग-अलग विशाल ग्रंथों की रचना की जा सकती है. किन्तु हम यहाँ पर उनका अत्यन्त संक्षेप में विवेचन करेंगे और देखेंगे कि आज के जगत् को वह कितनी बड़ी शक्ति, कितना अनन्त प्रकाश और सुख देने की सामर्थ्य रखते हैं.

अहिंसा शब्द आज विश्वव्यापक बन चुका है. किन्तु अहिंसा का बहुत स्थूल अर्थ ही अधिकतर लोगों ने समझा है. लोग समझते हैं कि दूसरे मानव को दुख पहुँचाने वाला कोई कार्य नहीं करना ही अहिंसा है. यह बहुत ही सीमित अर्थ है. हिंसा के सच्चे अर्थ में केवल मनुष्य ही नहीं बल्कि पशु-पक्षी कीड़े-मकोड़े इत्यादि सूक्ष्म जीवों की हिंसा भी वर्ज्य है. क्योंकि उनकी हिंसा करने से भी हमारा हृदय कठोर और क्रूर बनता है. और कठोर और क्रूर हृदय में सात्विक भाव जाग्रत नहीं होते. पूर्णतया और सही अर्थ में अहिंसा का पालन करना ही जीवन को नींव से सुन्दर और सुखी बनाने का उपाय है. जैन दार्शनिकों द्वारा प्रतिपादित अहिंसा के सिद्धान्त की यही विशेषता है कि वह अपनी इस महान् भावना को न केवल मनुष्य तक ही, बल्कि जीव मात्र तक विस्तारित करता है. इस सृष्टि में अपना सूक्ष्म से सूक्ष्म भी अस्तित्व रखने वाले प्रत्येक प्राणी को जैनदर्शन एक स्वतंत्र आत्मा स्वीकार करके उसके हित और उपकार की भावना पर बल देता है. जैन अहिंसा का यही वास्तविक, व्यापक और विशिष्ट स्वरूप है. यदि संसार इस व्यापक स्वरूप में इसका पालन करे तो यह संसार ही स्वर्ग के समान सुख का स्थान बन जाय.

सत्य का अर्थ है असत्य कथन अथवा विचार न करना. असत्य में हिंसा भी निहित है. हमारे असत्य वचन अथवा असत्य आचरण से किसी अन्य को दुःख अवश्य होगा. और धर्म तथा दर्शन का विचार करने वाले पाठकों को विस्तार से यह समझाने की आवश्यकता नहीं कि अन्य को दिया गया दुःख स्वयं हमारे लिये क्या लेकर आएगा ?

अस्तेय का अर्थ है चोरी नहीं करना. यहाँ इस चोरी शब्द का अर्थ केवल कानून की भाषा के अर्थ तक ही सीमित नहीं समझना चाहिए. इसका अर्थ है—जो हमारा नहीं है, न्यायपूर्वक हमारा नहीं है उसे स्वीकार नहीं करना. ऐसी कोई भी वस्तु लेना, जिस पर न्यायपूर्वक हमारा अधिकार न हो, चोरी माना गया है.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ब्रह्मचर्य एक अत्यन्त व्यापक व्रत है, इसका पूर्णतया पालन संसारी मनुष्यों के लिये संभव नहीं है. किन्तु व्यवहार में इसे दो प्रकार से लागू किया गया है. एक तो परस्त्री के प्रति कुदृष्टि अथवा कुविचार न करना, दूसरे स्वपत्नी के साथ अब्रह्मचर्य का सेवन सीमित करना. इसमें मन, वचन काय तीनों पर अंकुश रखना आवश्यक माना गया है.

अपरिग्रह अन्तिम आचार माना गया है. आज जो संसार की स्थिति है उसमें अपरिग्रह के सिद्धान्त का पालन कितना उपयोगी है, यह बहुत आसानी से समझा जा सकता है. अपरिग्रह का अर्थ है—अपनी आवश्यकता से अधिक संग्रह न करना. आज इस भौतिक जगत् में हमारे चारों ओर जो सामाजिक और राजनैतिक दुर्दशा दिखाई पड़ती है, उसका एक प्रधान कारण अपरिग्रह व्रत का पालन न करना भी है.

आज के संसार में धनवान् तथा गरीब वर्ग के बीच असह्य असमानता में से कार्ल मार्क्स (Karl Marx) का नया अर्थशास्त्र उत्पन्न हुआ. उससे प्रेरणा पाकर लेनिन (Lenin) ने रूस में एक जबरदस्त क्रान्ति उपस्थित की. उसमें से साम्यवाद तथा समाजवाद उत्पन्न हुये और उनसे रक्तमय क्रान्तियाँ हुईं.

जैन समाज-शास्त्रियों ने आज से हजारों-लाखों वर्षों पूर्व अपरिग्रह का जो अर्थशास्त्र बनाया था, यदि उसका पालन किया गया होता तो द्वेष, विद्वेष मारकाट और व्यापक हिंसा से पूर्ण घटनाएँ विश्व में न होतीं. कार्ल मार्क्स, लेनिन, स्टालिन, चाउ एन लाई आदि साम्यवादियों द्वारा अपनाई गई विचारधाराएँ तथा कार्यप्रणालियाँ भी घातक ही हैं. क्योंकि इनके पीछे अहिंसा की कोई भावना नहीं है.

शौषकों की हिंसा के विरुद्ध साम्यवादियों की हिंसा आई. किन्तु हिंसा से हिंसा नहीं मिटती, हिंसा से दुख समाप्त नहीं होता, हिंसा से सुख प्रकट हो ही नहीं सकता. यह एक भयानक विषमचक्र है, और अपरिग्रह का अभाव इसके मूल में है. मानव जाति को यदि सुख और शान्ति चाहिए तो इसका सच्चा और सफल उपाय अपरिग्रह का पालन ही है. सादगी और सन्तोष की वृत्ति विकसित करना ही है. परिग्रह से कभी सन्तोष-सुख नहीं मिलता है.

संक्षेप में इसी प्रकार कह सकते हैं कि जैनतीर्थंकर भगवन्तों ने संसारी मनुष्यों के पालन करने के लिये उपरोक्त पाँच आचार-सिद्धान्त बताए हैं, उनके पालन के अतिरिक्त समूची मानव-जाति की रक्षा, अस्तित्व और उद्धार का कोई अन्य मार्ग नहीं है.

इन सिद्धान्तों पर बड़ी गम्भीरता से विचार किया जाना चाहिए. जैनदर्शन के ये अक्षत सिद्धान्त परस्पर जुड़े हुए हैं. इनमें से आप एक को छोड़िए तो दूसरा स्वतः छूट जाता है.

इतने विवेचन से यह बात अब हमारी समझ में सहज ही आ जाती है कि यदि मनुष्य, मानवता एवं संसार की सुरक्षा और उन्नति का कहीं कोई मार्ग है तो वह मार्ग हमें जैनदर्शन ही दिखाता है. इन विशिष्टताओं को अपने भीतर समाहित किए हुए इस अद्भुत जैनदर्शन को यदि विश्व का सर्वश्रेष्ठ, अनन्य और अपराजेय दर्शन कहा जाय तो न इसमें कोई अतिशयोक्ति है और न कोई असत्य का अंश. यह बात एक निर्विवाद तथ्य के रूप में हमारे सामने स्पष्ट हो जाती है.

जैनदर्शन में आत्मविकास का अनन्त अवकाश

आत्मा और परमात्मा के विषय में विभिन्न दर्शनों की भिन्न-भिन्न मान्यताएँ हैं. जैनदर्शन की भी इस सम्बन्ध में अपनी एक विशिष्ट मान्यता है. और विचार करने पर हम देखेंगे कि वह मान्यता अन्य दर्शनों की सीमित मान्यताओं से कितनी विशिष्ट व्यापक और उच्च है.

कुछ दर्शन आत्मा के विषय में यह मानते हैं कि विभिन्न जीवात्माएँ वस्तुतः किसी एक ही परम-आत्मा (ईश्वर) का विस्तार हैं. अपना विकास और शुद्धि करते करते वे अंत में मुक्त होकर उसी परम-आत्मा में विलीन हो जाती हैं, हो सकती हैं. इस तरह ये दर्शन भिन्न-भिन्न जीवात्माओं की स्वतंत्र सत्ता स्वीकार न करते हुए एक ही ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करते हैं.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुछ अन्य दर्शन (उदाहरण के लिये बौद्धदर्शन) यह स्वीकार करते हैं कि आत्मा अन्ततोगत्वा किसी दीपक की लौ के समान बुझ जाती है और शून्य में विलीन हो जाती है. वह विलीनीकरण उस जीवात्मा का पूर्ण अनस्तित्व (Total Extinction) है.

इसके विपरीत जैनदर्शन की यह विशिष्ट मान्यता है कि प्रत्येक जीवात्मा का स्वतंत्र अस्तित्व है. जीवन्मुक्ति के पश्चात् आत्मा सिद्ध (परमात्मा) बन जाती है. और सिद्धात्माओं के निवास (सिद्धशिला) पर वह एक स्वतंत्र सिद्ध—परम आत्मा के रूप में स्थित रहती है. इस तरह जैनदर्शन प्रत्येक आत्मा के उच्चतम विकास और अस्तित्व के लिये एक अनन्त अवकाश की मान्यता रखता है. जैनदर्शन की यह मान्यता विशिष्ट तो है ही, साथ ही पूर्णतया तर्कयुक्त और व्यापक भी है.

जैनदर्शन और जगत्

मानव-मस्तिष्क में ये प्रश्न सदा से उठते आये हैं कि जिसमें हम सदा से रहते आये हैं और रहते हैं वह जगत् क्या है ? कब से है ? इसका निर्माण किसने किया ? किन उपादानों से किया ? अथवा क्या यह अनादिकालीन है ? अकरणीय है ? इन प्रश्नों के उत्तर खोजने और देने का प्रयत्न विभिन्न दर्शनों ने किया है. भिन्न-भिन्न समय पर और भिन्न कारणों से संसार के निर्माण किये जाने की बात ये भिन्न-भिन्न दर्शन कहते हैं. किन्तु जैसा तर्कयुक्त और संगत समाधान जैनदर्शन इस सम्बन्ध में प्रस्तुत करता है वह इन सब में विशिष्ट और श्रेष्ठ है. महात्मा बुद्ध ने, जो भगवान् महावीर के प्रायः समकालीन थे, ऐसे प्रश्नों पर अधिक कुछ भी नहीं कहा है. परन्तु भगवान् महावीर ने उनका सरल और बुद्धिगम्य स्पष्टीकरण किया है. जहाँ वस्तुएँ इतनी अधिक हों कि प्रत्येक की पृथक्-पृथक् गणना संभव न हो, वहाँ वर्गीकरण का सिद्धान्त उपयोगी होता है. जगत् का वर्गीकरण करने से हमें दो तत्त्व—मौलिक पदार्थ—उपलब्ध होते हैं. (१) जीव और (२) जड़. इनके अतिरिक्त और कोई मौलिक वस्तु है ही नहीं, अतएव यह कहा जा सकता है कि जीव और जड़ के समूह को ही जगत् कहते हैं.

प्रत्येक प्राचीन दर्शनशास्त्र और आधुनिक विज्ञान, इन दोनों की मान्यता है कि "नासतो विद्यते भावः, नाभावो जायते सतः" अर्थात् जो सत् नहीं, असत् है, वह कभी सत् नहीं हो सकता और जो सत् है उसका कभी अभाव नहीं हो सकता, इस सर्वसम्मत सिद्धान्त को स्मरण रखते हुए विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि जगत् यदि सत् है (और उसकी सत्ता निर्विवाद सिद्ध है) तो वह अनादिकालीन अवश्य है. इसका निर्माण न किसी ने किया है और न करने की आवश्यकता ही थी. इस प्रकार दो मौलिक पदार्थों का समूहात्मक संसार सदा से विद्यमान था, है और रहेगा. इसमें दिखलाई देने वाली विविधता इन्हीं दोनों वस्तुओं के अमुक भांति के सम्मिश्रण आदि पर निर्भर है. एक उदाहरण लीजिए—मिट्टी जड़ वस्तु है. कुम्हार उसे लेता है, चाक पर चढ़ाता है और घड़ा बना देता है. अब वह मिट्टी घड़े के रूप में आ जाती है. इसी प्रकार अन्यान्य वस्तुएँ अमुक प्रकार के संयोगों में पड़कर भिन्न-भिन्न रूप धारण करती रहती हैं. यही जगत् की विविधता का रहस्य है. किन्तु इस बाह्य विविधता के आवरण को चीर कर भीतर नजर डालने से हमें उल्लिखित जड़ और चेतन, यही दोनों मौलिक पदार्थ उपलब्ध होते हैं. ये अनादिकालीन हैं और अनन्तकाल तक रहेंगे. अतः ऐसा कहना सर्वथा उचित ही है कि जगत् अनादिकालीन है और अनन्त काल तक रहेगा. इसका न तो कोई कर्त्ता है, न हर्ता है.

जगत् की उत्पत्ति अथवा रचना के सम्बन्ध में जैनदर्शन का यह सर्वथा मौलिक, तर्कसम्मत, बुद्धिगम्य और विशिष्ट दृष्टिकोण है.

क्या ईश्वर कर्ता है ?

कुछ ऐसे मत हैं जिनकी मान्यता के अनुसार यह सारी सृष्टि परमात्मा के ही द्वारा उत्पन्न की गई है. किन्तु जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, सृष्टि अनादिकालीन है, अतः इसके बनने का प्रश्न ही नहीं उपस्थित होता. फिर भी तर्क के लिये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यदि हम यह मान लें कि परमात्मा ही इसे बनाता और बिगाड़ता है तो यह शंका उत्पन्न होती है कि आखिर इन झंझटों में पड़ने की उसे क्या आवश्यकता है ? इसमें उसका क्या अभिप्राय है ? ईश्वर कोई बालक नहीं है कि अपने मनोरंजन के लिये वह सृष्टि को बनाए और बिगाड़े. फिर यदि सृष्टि को बनाने का उसका स्वभाव है तो वह उसे बिगाड़ता क्यों है ? बिगाड़ने का स्वभाव है तो बनाता क्यों है ? बनाने और बिगाड़ने के दोनों स्वभाव परस्पर विरोधी हैं, अतः दोनों एक ही परमात्मा में नहीं हो सकते. परमात्मा सब प्रकार की इच्छाओं से मुक्त है. उसे सृष्टि बनाने की इच्छा नहीं हो सकती. तब कौन बलात् उससे बनवाता है ? यदि कोई बलात् उससे बनवा लेता है तो वह ईश्वर ही कैसे रहा ? वह बलात्कार करने वाली शक्ति ही क्या ईश्वर नहीं हुई ? ईश्वर तो उसके हाथ का एक कठपुतला हुआ. इस प्रकार ईश्वर के ईश्वरत्व में ही बट्टा लगता है.

ईश्वर को दयालु माना जाता है. यदि वह दयालु भी है और कर्त्ता भी है तो उसने भाँति-भाँति के दुखों का सृजन क्यों किया ? अपने माता-पिता के सर्वस्व, निर्दोष जीवनाधार पुत्र को असमय में ही मार कर उन्हें असह्य वेदनाओं में पटक कर उनकी छटपटाहट देखता रहता है, तब ईश्वर की दयालुता कहाँ चली जाती है ? इस प्रकार सृष्टि को अनन्त दुःख देता हुआ क्या ईश्वर दयालु कहा जा सकता है ?

यहाँ यह कहा जा सकता है कि यह जीव के पूर्वोपार्जित कर्मों का फल है. न पहले पाप करता न ऐसा दुःखमय परिणाम भोगना पड़ता. इसमें ईश्वर क्या कर सकता है ? किन्तु यह बचाव भी विचार करने पर छिन्न-भिन्न हो जाता है. ईश्वर सर्वज्ञ है और सर्वशक्तिशाली भी माना जाता है. जब उन जीवों ने पाप करने का विचार किया तो सर्वज्ञ ईश्वर ने जाना ही होगा. वह दयालु है इसलिए उन्हें पाप से बचाने का प्रयत्न वह कर सकता था. और वह सर्वशक्तिमान् है इसलिए किसी प्रकार उन्हें पाप से रोक भी सकता था. किन्तु उसने ऐसा कुछ नहीं किया—वह सर्वज्ञ-दयालु, सर्व-शक्तिमान् और कर्ता ईश्वर केवल देखता ही रहा ! यह विचार कहाँ तक उचित है इसे पाठक स्वयं ही सोच सकते हैं. अस्तु, जैनदर्शन ईश्वर को इन प्रपंचों से, इस क्रूरता से मुक्त रखता है. वह ईश्वर को इन कलंकों से बचाता है. वह मानता है कि ईश्वर सर्वज्ञ है, पूर्ण वीतराग है, कृतकृत्य है, अपुनरावृत्ति है, सांसारिक झंझटों से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है.

एक मात्र शंका, जो यहाँ उपस्थित की जा सकती है, वह यह है कि यदि ईश्वर वीतराग है, निग्रह और अनुग्रह नहीं करता, रुष्ट और तुष्ट नहीं होता, तो वह अपने भक्तों की भलाई नहीं करेगा. तब उसकी आराधना करने की क्या आवश्यकता है ?

इसका स्पष्ट और सरल उत्तर यह है कि ईश्वर हमारी भलाई करे, इसलिए हम उसकी आराधना करें; यह स्वार्थ-पूर्ण हृदय की वासना है. ऐसी भावना के साथ ईश्वरभक्ति करना वास्तविक भक्ति नहीं है बल्कि रिश्वत देकर उसे फुसलाना ही है. भक्ति में आदान-प्रदान की भावना नहीं होती, सर्वस्व दान की कामना होती है. भक्ति व्यापार नहीं है. अतः निष्काम भक्ति ही वास्तविक भक्ति है. कल्याण स्वयं ही इस प्रकार की भक्ति द्वारा आकर चरणों पर लोटता है. कहा गया है—'देवा वि तं नमंसंति जस्स धम्मे सया मणो.' (जिसका मन सदा धर्म में लीन रहता है, देवता भी उस के चरणों पर लोटते हैं.)

तात्पर्य यह नहीं है वीतराग की भक्ति से कुछ लाभ नहीं होता. मानसशास्त्र का यह नियम है कि जो व्यक्ति सदैव जिसका स्मरण करता है, जैसा बनने की भावना करता है, वह कालांतर में वैसा ही बन सकता है. इस नियम के अनु-सार वीतराग का स्मरण करने से और वीतराग बनने की प्रबल भावना से भक्त भी वीतराग बन जाता है. इसके अतिरिक्त वीतराग भगवान् आत्मविकास के सर्वोतम आदर्श हैं. हमें उस आदर्श तक पहुँचना है. अतः हमारा ध्यान सदैव उस आदर्श पर रहना चाहिए.

जड़ होने के कारण अंजन की इच्छा नहीं होती कि अमुक व्यक्ति मुझे सेवन करता है, इसलिए उसकी दृष्टि निर्मल कर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूं. फिर भी अंजन का सेवन करने वाले की दृष्टि निर्मल हो जाती है. इसी प्रकार वीतराग होने के कारण भगवान् की इच्छा नहीं होती कि मैं अपने भक्त का कल्याण करूं, तो भी उनकी भक्ति करने वाले का कल्याण अवश्य होता है. दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि, किसी कार्य का कर्त्ता हो या न हो परन्तु कारणों की पूर्णता होने पर कार्य की निष्पत्ति हो ही जाती है. अतः वीतराग भगवान् की भक्ति करना ही चाहिए. वह कभी निष्फल नहीं हो सकती.

जैनदर्शन नित्य नूतन है

जैनदर्शन सम्बन्धी अपनी इस विवेचना में हमने देखा कि इस महान् दर्शन का प्रत्येक सिद्धान्त, चाहे वह सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थ–अणु-परमाणु के विषय में हो अथवा सर्वव्यापी सर्वशक्तिमान् परमात्मा तथा अनन्त और अनादि सृष्टि के विषय में, अकाट्य, तर्कयुक्त और विशिष्ट है. यही कारण है कि इस विश्व का यह दिग्विजयी दर्शन चिरनवीन-नित्य-नूतन है. लाखों वर्षों से जो सिद्धांत इस दर्शन के द्वारा प्रतिपादित किये गए हैं वे आज भी जीवन के हर क्षेत्र में, जीवन की प्रत्येक समस्या के विषय में, सीधा, सच्चा और स्पष्ट समाधान प्रस्तुत करते हैं. हमने देखा कि जैनदर्शन का अनेकान्त-वाद, जिसे युग-युग के पूर्व से जैन दार्शनिकों ने संसार को भेंट किया है, एक ऐसा दृष्टिकोण है जिसे अन्ततोगत्वा विज्ञान ने स्वीकार किया है. उसके अतिरिक्त कोई दृष्टिकोण नहीं है जिसके आधार पर चल कर हम वस्तु, जीवन, सत्य को उसके सच्चे स्वरूप में जान सकें. हमने देखा कि जैन दर्शन ने जो आचार-पद्धति हमें बताई है, वही, केवल वही, आचार-पद्धति है जिसका पालन करने से ही आज की मानवता की, सृष्टि की रक्षा और अस्तित्व सम्भव है. यह असम्भव है कि मानव-समाज उस आचार-पद्धति को त्याग दे और त्याग कर अपना अस्तित्व कायम रख सके. हमारे जीवन की समस्त कठिनाइयाँ, हमारी समस्याएँ, हमारे दुख, सर्वनाश का भय जो हमारे द्वार तक आ पहुँचा है, यदि दूर किया जा सकता है तो केवल इसी आचार-पद्धति के अनुसरण द्वारा ही. हमने देखा कि जीवन, जगत् और जगत् की रचना के विषय में जैनदर्शन ने जो समाधान उपस्थित किए हैं, वे अकाट्य हैं और उन्हें स्वीकार किए विना हमारे पास अन्य कोई मार्ग नहीं है. इसीलिए हमें यह मानना ही पड़ेगा कि जैनदर्शन इस संसार का एक अनन्य दर्शन है. कोई अन्य दर्शन नहीं जो इसकी समता में रखा जा सके. जैनदर्शन का चिन्तन, उसके सिद्धांत किसी भी तर्क द्वारा अवास्तविक प्रमाणित नहीं किए जा सकते. ऐसा सुदृढ़, सुविचारित ठोस वैज्ञानिक दर्शन यदि इस संसार का अपराजेय दर्शन है, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं.

हम अपनी ओर से यही भावना कर सकते हैं कि संसार के इस अनन्य, अपराजेय और नित्य नूतन दर्शन—जैनदर्शन—का ज्ञान और अनुसरण इस विश्व के सन्मुख कल्याण का मार्ग मुक्त करे.

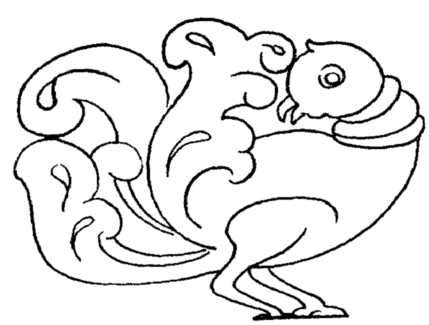

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org